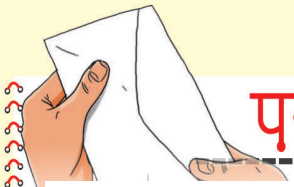

पत्र

सितम्बर-17 अंक की प्रस्तावना में ललितजी ने बड़ी सटीक बात कही है। टी.वी. ने पाठकों को दर्शक बनाने में अगर कोई कसर बाकी रख छोड़ी हो तो उसे मोबाइल ने पूरा कर दिया। एक अरसा बीत गया कि हिन्दी के पाठक वर्ग ने धर्मयुग, सारिका,सा. हिन्दुस्तान, पराग आदि पत्रिकाओं को खोया है। अब रेल व बस-अड्डों के बुक स्टॉल पर गिनती की पत्रिकाएं ही दिखती हैं। वे भी अधिकतर साहित्येतर हुआ करती हैं। हिन्दी का क्षेत्र बहुत बड़ा है। इस हिसाब से उपरोक्त पत्रिकाओं का होना ज़रूरी था। पाठक और पत्रिकाओं का एक अखिल भारतीय स्तर का मंच होना चाहिए जहाँ सभी भारतीय भाषाओं का हिन्दी में अनुवादित स्थान हो । हिन्दी सबको साथ लेकर जब चलेगी तब खूब आगे बढ़ेगी।

तपेश भौमिक
पो. गुड़ियाहिटी, कुचबिहार -736171
प.बंगाल। मो. 9851273109

अक्षर पर्व तो लगातार अपने आकर्षक कलेवर और उत्कृष्ट रचनाओं के साथ मिल रहा है पर यह कहते हुए बहुत दुख हो रहा है कि समयाभाव के कारण पढ़ नहीं पाता हूँ पर अक्टूबर अंक के प्रस्तावना में महात्मा गांधी जी और चंपारण सत्याग्रह की चर्चा देखकर स्वयं को रोक न सका और पत्रकार अरविंद मोहन द्वारा चंपारण सत्याग्रह पर लिखी दो पुस्तकों की चर्चा ने मेरे ज्ञान का संवर्धन किया और इन बहुमूल्य पुस्तकों को देखने को भी प्रेरित किया है, अतः ललित जी को बहुत - बहुत धन्यवाद !!

मैं बड़े ही चटोर किस्म का आदमी हूँ और खाने-पीने की वस्तुएँ मुझे विशेष रूप से आकर्षित कर लेती हैं, इसलिए फतेहपुरी पुलाव देखकर मुझसे रहा नहीं गया और मैं शब्दों पर टूट पड़ा !! ज़ायकेदार पकवानों की फेहरिस्त ने मुँह में पानी ला दिया और मैं शब्दों में कछि अलग ही ज़ायके तलाशने लगा! रईस और सम्पन्न परिवार के परमेश्वरी दीक्षित जब देर से शादी करना चाहता था तब क्यों उसके माँ - बाप उस पर जल्दी शादी का दबाव डाल रहे थे, पर आगे की कहानी जानने के बाद मजा ही आ गया !! जो व्यक्ति शादी के लिए ना-नुकुर कर रहा था वह कामिनी के रोग़नजोश का ऐसा दीवाना बना कि उसने कामिनी से शादी कर ली और खान - पान में किसी भी तरह के पर्दे और छद्म से दूर एक स्वछंद और उन्मुक्त गृहस्थ - जीवन जीने लगा !!

नवनीत कुमार झा, हरिहरपुर, दरभंगा (बिहार)

अक्षरपर्व ने अपना एक विशिष्ट लेखक वर्ग बनाया है और पाठक वर्ग भी। चंपारण पर आपका संपादकीय इतिहास के उस कालखंड से इस नए पाठक वर्ग का बखूबी परिचय कराता है। यह एक तरह से जरूरी भी है कि नई पीढ़ी को अपनी सुदृढ़ परंपरा के साथ जोड़ कर चलें। उपसंहार में सर्वमित्रा ने भी बड़े माकूल बिंदु उठाए हैं, जैसे कैशलेस से पहले कास्टलेस हों। मेरी शुभकामनाएं **केवल गोस्वामी, दिल्ली**

अक्टूबर अंक का आवरण चित्र नायाब है। हवन कुंड में शेष बच गई तिल के फूल काव्यात्मक अनुभूति से जोड़ गए। इसे राजनीतिक कैनवस पर रखकर भी करीने से सोचा-समझा जा सकता है। छायाकार बंशीलाल परमार को इसके लिए बधाई। उनका यह कथन कि धार्मिक अनुष्ठान की खुशी चाहे जिसे हो, पर इस अवशेष जीवन ने मुझे झकझोर दिया। एक कविता कथा की तरह है। अजीत कुमार जी और उनकी जीवनसंगिनी के स्नेहमयी चौधरी के निधन ने व्यथित कर दिया। कुशेश्वर की गोरखपुर त्रासदी पर कविता अंतर में बिंध गई। डा.लोक सेतिया तन्हा की ग़ज़ल में व्याकरण के अनुशासन कम हैं। मंजुला उपाध्याय की ग़ज़ल कथ्य और शिल्प में सजी है। कृपाशंकर चौबे का साहित्यिक पत्रकारिता पर आलेख काफी जानकारियों से समन्वित है। त्रिलोचन की रचनाशीलता पर वैद्यनाथ झा का आलेख काफी श्रम से लिखा गया है।

डा.मधुर नज्मी, गोहना मुहम्मदाबाद, जिला-मऊ, उत्तरप्रदेश

अक्षरपर्व ने मुक्तिबोध के कृतित्व लेखे को स्मरण कर जीवन संघर्षों को बलवान किया है। दरअसल कलम का सिपाही होने का मतलब ही यही है कि लेखक अपनी उर्जा जनसंघर्षों को सौंपे, जिससे निर्णायक हार-जीत में शोषणमुक्त समाज का निर्माण हो। वैज्ञानिक समाजवाद की स्थापना हो। आपातकाल का समर्थन करने वाले कई लेखक-कवि यह कहते लजाते नहीं कि मुक्तिबोध ने जीवन संघर्षों से बचने के लिए फैंटेसी और रहस्यलोक बुनकर दुर्बोधता के साथ अस्तित्ववाद को अपनाया। सच यह है कि मुक्तिबोध से होड़ करना उनके बूते की बात नहीं है।

इस अंक में सर्वाधिक आकर्षण डा.जीवन सिंह से महेशचंद्र पुनेठा की बातचीत है। आशीष सिंह, जीवेश प्रभाकर, नीरज खरे, डा. मीनाक्षी जोशी की प्रस्तुति महत्वपूर्ण है। उपसंहार में सर्वमित्रा सुरजन ने बहुत कुछ कहा है। **अलीक, मो.9111695443**